शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मई 2014

बाजारवाद में लोक साहित्य की प्रासंगिकता

सरिता विश्नोई (शोधार्थी),
हिन्दी विभाग
वनस्थली विद्यापीठ
राजस्थान, भारत

शोध संक्षेप

सहस्राब्दियों से जीवनानुभवों को अपने में समेटे हुए हर प्रान्त और अंचल के गांवों के चप्पे-चप्पे में बिखरी हमारी पारम्परिक लोक संस्कृति और हमारा लोक साहित्य आज की दिन-ब-दिन जटिल होती जा रही समस्याओं में आज और भी प्रासंगिक हो गया है। लोक साहित्य, लोक संस्कृति और लोक की बोली में ऐसा धन पड़ा है जिससे आज का साहित्य, जीवन मूल्य और भाषा समृद्ध हो सकती है। प्रस्तुत शोध पत्र में बाजारवादी संस्कृति में लोक साहित्य की प्रासंगिकता की चर्चा की गयी है।

प्रस्तावना

लोक साहित्य वह साहित्य होता है जो किसी समाज में जन साधारण के बीच सदियों से मौखिक या वाचिक परम्परा में विद्यमान होता है। उसके ज्ञान का आधार शास्त्रीय नहीं पूर्व प्रचलित परम्पराए और पीढ़यों द्वारा प्रदत्त ज्ञान होता है। लोक साहित्य चूंकि लोक चेतना का साहित्य है। इसलिए इसमें सामान्य जन-बहुसंख्यक या सर्वहारा वर्ग के सुख-दुख, आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, आह्लाद-उल्लास आदि की अभिव्यंजना तो होती ही है, साथ ही उनकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक समस्याओं को भी केन्द्र में रखा जाता है। लोक साहित्य, लोक जीवन का सहज, अनगढ़ और जीवित माध्यम है। लोक साहित्य में भारतीय मानव हृदय, मानव मूल्य, सुख दुखानुभूति उसकी आशा, निराशा, कुण्ठा, वेदना सब समाहित रहती है।

बाजारवाद और भूमंडलीकरण

इक्कीसवीं सदी बाजारवाद और भूमंडलीकरण की सदी है। "भूमंडलीकरण के कारण वैश्विक वित्तीय बाजार का उत्थान हुआ। टेलीविजन, इंटरनेट तथा संचार के दूसरे रूपों के साथ सूचना का भूमंडलीकरण होने लगा। दुनिया में अन्तर्सम्बन्ध बढ़ा, एक गतिशीलता आयी। भूमंडलीकरण ने दुनिया में वित्तीय पूंजी के किसी भी देश में आने-जाने पर लगी रूकावटें मिटा दी। देशों के हाथ बंधते गये, सरकारें जनहित के अनुरूप अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करने के लिए क्षमतावान नहीं रह गयी। यही वजह है कि लगभग इन दो दशकों में बाजार के मूल्य मनुष्य जाति की अबतक की सारी लोकतांत्रिक उपलब्धियों पर भारी है।"1

आज बाजारवाद और भूमंडलीकरण मानवीय संस्कृति के आर्थिक संस्कृति में परिवर्तन का आंकाक्षी है। यह आर्थिक संस्कृति साहित्य, कला और विचार को वस्तुवादी रूप से देखती है तथा मानवीय चेतना पर वस्तुवादी चेतना को आरोपित कर रही है। यह अपने प्रभाव से सभ्यता और संस्कृति को विनष्ट कर रही है और समाज में अपसंस्कृति का प्रसार कर रही है। साहित्य

मानव-समाज की अभिव्यक्ति और रचनात्मक प्रवृत्ति के विकास सहयोगी रहा है। जन भावनाओं की अभिव्यक्ति, संघर्ष और प्रतिरोध की संस्कृति के निर्माण में साहित्य की भूमिका असंदिग्ध है। पूंजीवादी साम्राज्यवाद 'भूमंडलीकरण' के माध्यम से पुनः 'अपने आर्थिक साम्राज्यवाद' की स्थापना के लिए प्रयत्नशील है। बाजारवाद और उपभोक्ता संस्कृति इसका प्रमुख कारण है। इनके कारण आज हमारी संस्कृति, सामाजिक संरचना और मूल्यों को विध्वंस कर रहा है। इसने अपने उत्पादों से एक ऐसी आभासी दुनिया को निर्मित किया है, जिसमें आकर्षक उत्पादों और आकर्षक विज्ञापनों के मायाजाल में अपनी चेतना और विवेक से विरत होकर एक उपभोक्ता में परिवर्तित हो जाता है। इसने लोक साहित्य, लोक कला और लोक संस्कृति को भी व्यावसायिक उत्पाद में बदल दिया है। आज बाजार का समय है और बाजार हमें नियंत्रित करते हुए हमारी अस्मिता को चुनौती देना चाहता है।

बाजारवाद ने व्यक्ति, समाज और देश के अस्तित्व को विघटित किया है। इसकी उपभोक्ता संस्कृति ने घर-परिवार, गाँव-शहर, शिक्षा-संस्कृति, साहित्य, दर्शन, विचार और मानवीय संबंध सबको अपनी चपेट में ले लिया है। इस दौर में लोक साहित्य जीवन मूल्यों, मानवीय संवेदनाओं उनकी भावनाओं, सभ्यता, संस्कृति, विचार, मनुष्यता की सघन अनुभूतियाँ है । भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर में सामाजिक सरोकार के प्रति आकर्षण कम हुआ है। समाज के प्रति नैतिक जिम्मेदारी का जो भाव पहले व्यक्ति को अनुशासित और दूसरे व्यक्ति से जोड़ने का काम करता था, उसे बाजारवाद और उपभोक्ता संस्कृति ने कमजोर कर दिया है। लोक साहित्य और लोक संस्कृति व्यक्ति को परस्पर जोड़ने, जीवन मूल्यों को संरक्षित करने का कार्य करते हैं। भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर में लोक साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ा है। आज लोक संस्कृति के अर्थ को सीमित करते हुए बाजार में मनोरंजन और दिखावा की जो पश्चिमी ढंग की चीजें आ रही है, अब वही संस्कृति मानी जा रही है।

आज बाजारवाद, भूमंडलीकरण, सूचना प्रोद्यौगिकी और इंटरनेट का दौर है। इस दौर में आज लोक संस्कृति और साहित्य के महत्त्व का आकलन, वैश्विक दृष्टि से भी करने की आवश्यकता है, क्योंकि लोक साहित्य में व्याप्त मानवीय सन्दर्भों के कारण इस साहित्य का अपने क्षेत्र विशेष की सीमा से आगे बढ़कर पूरे विश्व में परचम फहराने की क्षमता है। लोक साहित्य किसी प्रदेश की संस्कृति का संवाहक ही नहीं है उसमें सम्पूर्ण मानवता को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने की शक्ति है।

लोक साहित्य और बाज़ार

शिष्ट समाज की संस्कृति से लोक संस्कृति एकदम भिन्न है, जो लिखित न होकर मौखिक परम्पराओं पर अधिक निर्भर है। इसीलिए यह शाश्वत है। यह मौखिक रूप से एक पीढ़ी दर पीढ़ी एक दूसरे को हस्तान्तरित होती रहती है। लोक के ज्ञान का आधार विज्ञान नहीं अपितु पूर्व प्रचलित परम्पराएँ और पीढ़ी दर पीढ़ी श्रुत ज्ञान होता है। समाज में व्याप्त विश्वास, भावनाएँ, आदर्श ही इनकी जीवनधारा का निर्माण करते हैं। अतः बनावट से दूर हृदय की निश्चल सरल धारा में अवगाहन कर ये सरलता का रसपान करते हैं। अतः लोक साहित्य लोक संस्कृति का प्रतिबिम्ब होता है। परिष्कृत साहित्य से विपरित लोक

साहित्य भाषा, व्याकरण के नियमों से सदा मुक्त होती है। लोक बोली के माध्यम से उनकी चिन्ता, पीड़ा, वेदना तथा हर्ष उल्लास की अकृत्रिम अभिव्यक्ति लोक साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है। सुखी मानव जीवन और समाज के लिए लोक साहित्य एक महत्त्वपूर्ण घटक है। इसकी सोद्देश्यता मानव जीवन को परिमार्जित करती है। किसी भी देश, राष्ट्र की अस्मिता उसकी लोक संस्कृति पर आधारित है। यह वह संस्कृति है जो हमारी नयी पीढ़ी को चेतना प्रदान कर सकती है। यह संस्कृति हमें लोक मानस के भावों के अत्यधिक पास लाती है। लोक साहित्य में लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोक नाट्य, कहावतें-मुहावरे आदि मौखिक साहित्य प्राप्त होता है। कहावतें दैनिक जीवन में इतनी व्याप्त हैं कि इनके लिए प्रयास करने की आवश्यता नहीं होती है। ये अपने आप स्वयं स्फूर्त सहजरूप से प्रकट हो जाती हैं। इनका प्रयोग अधिकतर बुजर्ग लोग करते हैं। लोक साहित्य हमारे लोक के अनुभवों का खजाना है। ये ज्ञान का सागर है। जन समुदाय का सूक्ष्म निरीक्षण और सामान्य ज्ञान की परिचायक हैं। इस साहित्य से लोक की विचारधारा, ज्ञान, अनुभवों, संस्कृति का सहज ही पता चल जाता है। यह साहित्य लोक जीवन का वास्तविक प्रतिबिम्ब होता है। लोक संस्कृति लोक की सामूहिक जीवन के सतत् संबधों में विकसित होता चलती है।

लोक संस्कृति केवल लोक जीवन को समझने का सूत्र नहीं और माध्यम नहीं है, वह अपने युग के इतिहास को भी अपने हृदय में समेटे हुए होती है। लोक संस्कृति तत्कालीन लोक, लोकमानस और परिस्थितियों पर निर्भर होती है। सहजता, निश्च्छलता, स्वच्छंदता और सरलता को यही गुण लोक संस्कृति में विद्यमान है तथा लोक-संस्कृति तो लोक की संस्कृति है, इसीलिए गाँव के साथ शहर भी इसके व्यापक दायरे में आ जाते हैं। लोक का अपना मानस है। यह अपनी भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों को अपने में समेटे हुए होता है। लोकगाथाओं में यहीं लोकमानस बोलता है। जीवन मूल्यों के साथ लोक संस्कृति के विविध पक्षों को स्वयं में समेटे हुए लोकगाथाएँ लोक को स्वयं में जीवित रखे हुए है। लोक समाज में व्याप्त धर्म, आचार-विचार, रीति-रिवाज, परम्पराएँ और विश्वास आदि में ही लोक-संस्कृति के बीज बिखरे पड़े हैं। किसी क्षेत्र विशेष की लोक-संस्कृति का परिचय प्राप्त करने का सुलभ और सशक्त माध्यम लोक साहित्य माना जाता है। हमारी संस्कृति का सच्चा तथा स्वाभाविक चित्रण लोक-साहित्य में उपलब्ध होता है। वर्तमान में हम वैश्वीकरण के युग में जी रहे हैं। जहाँ भूमण्डलीकरण के दौर के साथ उत्तर आधुनिकता का समय है इसके साथ ही अनेक चुनौतियों एवं सम्भावनाओं के साथ इक्कीसवीं सदी का प्रथम दशक भी बीत चुका है। आज ष्च्वचए क्पेबवए त्मउपगष् के गीतों ने हमारी लोक भावना की अभिव्यक्ति पर रंग जमाना शुरू कर दिया है। टी.वी. संस्कृति गाँवों तक पहुँच चुकी है। नैतिक मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है। ऐसे समय में हमारी सांस्कृतिक सभ्यता को संरक्षित करना पडेगा तभी हम इसे नयी पीढ़ी को सौंप सकेंगे और अपनी संस्कृति के मूल्यों की रक्षा कर सकेंगे।

किसी देश की सभ्यता एवं संस्कृति, धर्म, रीति-रिवाज, कला साहित्य एवं सामाजिक आकांक्षाओं का सूक्ष्म अवलोकन लोक साहित्य के माध्यम से

अभिव्यक्त होता है। लोक जो कुछ कहता है, अनुभव करता है उसे समूह की वाणी बनाकर कहता है। यह साधारण जनता का हंसना, गाना, खेलना जिन शब्दों में अभिव्यक्त हो सकता है वह सब कुछ लोक साहित्य की परिधि में आ जाता है। लोक साहित्य में लोक संस्कृति वास्तविक प्रतिबिम्बत भी होता है। लोक में व्याप्त रीति-रिवाज एवं परम्पराएँ जहाँ एक और अतीत की गौरव गाथाओं पर प्रकाश डालती है वहीं दूसरी ओर भविष्य के लिए आत्मबल, साहस एवं शक्ति भी प्रदान करती हैं। बाजारवाद के इस दौर में लोक के पास अभी इतनी शक्ति है कि वह 'सांझा जीवन-साझा संस्कृति का निर्माण कर सके। "लोक साहित्य अछोर क्षितिज पर फैला अनंत आकाश है-लोक साहित्य में अतल सागर जैसी गहराई है, जंगल में पाये जाने वाले पेड़-पौधों की तरह वह अनादि है, उसमें हृदय से निकले हुए स्वर हैं। आत्मा के गीत हैं, मन की व्यथा-कथा है, भारत की लोक संस्कृति का चित्रपट है। वे साहित्य की अमूल्य निधि हैं, उनके भीतर हमारा इतिहास झांकता है, वे सही अर्थों में हमारे सामाजिक जीवन का दर्पाण, इतिहास शोधक हैं। यदि इसका उपयोग किया जाये तो हमारा इतिहास, सजीव, सन्तुलित, सर्वांगीन बन जायेगा। लोक साहित्य भाषा बोली के चक्रव्यूह से दूर होता है। कभी अतीत नहीं होता वह सदैव प्रतीत होता है। लोक अवलोकित होता है, उसकी शक्ति और सम्पदा भी है। क्योंकि वह रितता नहीं है। रीतने की स्थिति में वह ऋचा होता है, पुराना होने पर पुराण होता होता है, सुन्दर होने पर श्लोक होता है, वह संवेदनशील है, वह पत्थर नहीं मिट्टी है वह ममता है, धरती के आंचल की सुरक्षा और स्नेह है, और दुग्ध सदृश अमृत है। कंठासीन साहित्य परम्पराशील होते हुए उन लोगों में व्याप्त होता है, जो दिखावे से दूर सहज प्रवृत्तियों में संस्कारित होते हुए, परिपाटीगत आस्था एवं विश्वासों के डोर में बंधे सामूहिक जीवन के सहयात्री होते हैं।"2

सामूहिक चेतना

लोक अपनी सामूहिक चेतना और सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना से संचालित होता है। लोक विश्वास में उद्भूत लोक चेतना वास्तव में लोक जीवन की व्याख्या करती है। हमारे तमाम त्यौहार, उल्लास, स्वप्न इसी से जुड़े हैं। यदि हमें अपने सांस्कृतिक परिवेश को समझना है तो इस लोक-जन की चेतना को समझना होगा। "लोक का हुए बिना देश का नहीं हुआ जा सकता है, फिर वैश्विक होने की कल्पना कैसे की जा सकती है। लोक प्रेम से होकर ही रास्ता विश्व प्रेम की ओर बढ़ता है।"3 आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी के शब्दों में 'गाँव के पोखर, भैंसों पर खेलना-ये सब जो स्मृति-दंश हैं वे वापस नहीं आ सकते। विकास के नाम पर सिर्फ पर्यावरण का नुकसान हुआ है।'4 लोक कथाकार विजयदान देथा का मानना है कि "यह समय विज्ञान और प्रौद्योगिकी का है। इसने लोक संस्कृति को सबसे ज्यादा प्रभावित किया है। अगर प्रौद्योगिकी लोक कथाओं को बच्चों की चेतना में डालकर रख पाती तो अच्छा था। ऐसा होता तो हमारे बच्चे परम्परागत खेलों को भूल नहीं पाते और कई कलाएँ मर नहीं जाती। आज अंग्रेजी के वर्चस्व ने लोक भाषाओं के अस्तित्व पर खतरा पैदा कर दिया है। हर देशज चीज को नकारने की साजिश चल रही है। इसका सीधा असर नयी पीढ़ी में देखने को मिल रहा है। उसकी चेतना में लोक जीवन के लिए कोई स्थान नहीं बचा है। सवाल है

कि इस विश्व-ग्राम में हमारी लोक संस्कृति का क्या स्थान होगा।"5

निष्कर्ष

वास्तव में हजारों वर्ष से लोक साहित्य मनुष्य के अन्तर्मन की अभिव्यक्ति का सफल माध्यम रही हैं। लोकगाथा, लोक कथा, लोकगीत, लोक नाट्य आदि के माध्यम से लोक के मनोभावों का प्रकटीकरण होता रहा है। इन्हीं के माध्यम से हमारी लोक संस्कृति एक लंबे कालखंड से अविरल-अक्षुण्ण प्रभावित होती चल रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 डॉ. शशि भूषण कुमार 'शशि', भूमंडलीकरण, साहित्य, समाज और संस्कृति, लेख 'भूमंडलीकरण: समाज और साहित्य, डॉ. मांहित ठाकुर से उद्धृत, पृ. 45, एक्सिस बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2013

2 उद्धृत लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति: परम्परा की प्रासंगिकता एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य, डॉ वीरेन्द्र सिंह यादव, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2012, पृ. 10-11

3 बोलियों की अस्मिता, धनंजय सिंह, जनसत्ता, 25 अप्रैल 2010

4 अच्छी रचना पाठक को मुग्ध करती है, विश्वनाथ त्रिपाठी, कादम्बनी (मासिक), अप्रैल 2012, पृ. 64

5 विजयदान देथा उर्फ बिज्जी (शिरीष खेर से बातचीत में) तहलका (पत्रिका), 31 अक्टूबर 2011, पृ. 60